फिलस्तीन-इजराइल: मिथक और यथार्थ

प्रेम सिंह

1

यह सही है कि गाजा पट्टी में पिछले करीब दो सप्ताह से जारी इजराइल द्वारा किए जा रहे फिलीस्तीनियों के नरसंहार के लिए हमास जिम्मेदार है। 1987 में अस्तित्व में आया हमास फिलीस्तीनियों के मौजूदा नरसंहार के लिए तो जिम्मेदार है, लेकिन उसके 7 अक्तूबर के हमले में हुई इजराइली नागरिकों की हत्याओं के लिए हमास ले पहले इजराइल और उसके समर्थक देश जिम्मेदार हैं। यह तथ्य कई स्रोतों से सामने आ चुका है कि अरब/फिलीस्तीनी अस्मिता पर आधारित नागरिक प्रतिरोध (सिविल रेसिसटेंस) की ताकत को खत्म करने के लिए इजराइल ने इस्लामी अस्मिता पर आधारित हमास की आतंकी (टेररिस्ट) ताकत को खड़ा किया था। इजराइल ने हमास के संस्थापक शेख अहमद यासीन के साथ सहयोग किया था, ताकि फिलीस्तीनी मुक्ति संगठन (पीएलओ) और फतह को कमजोर किया जा सके। शेख यासीन, जो व्हील चेयर पर चलते थे, की इजराइल ने 2004 में लक्ष्य-हत्या (टारगेटेड किलिंग) की थी।

ऐसा नहीं है कि 1964 में स्थापित पीएलओ अथवा अन्य फिलीस्तीनी गौण (फ्रिंज) गुट इजराइल में या अन्य देशों में इजराइलियों पर घात लगा कर हमले नहीं करते थे। खुद यासर अराफ़ात ने 1993 के ओस्लो समझौते के तहत हिंसक संघर्ष का रास्ता छोड़ने का ऐलान किया था। तभी पीएलओ ने इजराइल को नष्ट करने की प्रतिज्ञा छोड़ कर, उसके अस्तित्व के अधिकार को भी स्वीकृति दी थी। तब तक फिलीस्तीन-इजराइल संघर्ष (कान्फ्लिक्ट) की कभी न सूखने वाली नदी में दोनों पक्षों का काफी लहू बह चुका था। अलबत्ता ओस्लो समझौते से एक उम्मीद बंधी थी कि कम से कम आगे दोनों तरफ से होने वाले खून-खराबे पर कुछ लगाम लगेगी। लेकिन हमास ने आगे बढ़ कर खून-खराबे की बागडोर सम्हाल ली। दुनिया की सर्वाधिक ताकतवर सेनाओं में एक इजराइली सेना तो थी ही।

इजराइल अपना 'धर्म-युद्ध' अपनी धार्मिक यहूदी अस्मिता, और ताकतवर देशों - अमेरिका एवं यूरोपीय देश - की सहायता के बल पर लड़ रहा था। उसके पास संयुक्त राष्ट्र (यूएन) और बड़ी ताकतों की तरफ से मान्यता-प्राप्त एक राज्य था, और बलशाली सेना थी। फिलीस्तीनी अपनी बलात छीन ली गई अरब/राष्ट्रीय अस्मिता की बहाली और देश के लिए लड़ रहे थे। वे जोर्डन, लेबनन, मिस्र, सीरिया, ट्यूनीशिया आदि देशों से अपना संघर्ष चलाते थे। उनके पास सेना नहीं थी, ताकि वे अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के प्राकृतिक अधिकार के लिए इजराइल की तरह "मिलिटरी

एक्शन" कर सकें। बड़ी ताकतों द्वारा उन्हें जिस तरह से अचानक धावा बोल कर खदेड़ा गया अथवा अधिकृत किया गया, उसके खिलाफ सत्याग्रह/सिवल नाफरमानी की कार्य-प्रणाली (मोड ऑफ एक्शन) की गुंजाइश शायद नहीं थी। वे नागरिक प्रतिरोध के साथ फुटकर "टेरर एक्शन" के रास्ते पर चल निकले।

गांधी ने 1938 में ही कहा था: "फिलीस्तीन उसी तरह अरबों का है जिस तरह इंग्लैंड अंग्रेजों का और फ़्रांस फ़्रांसिसियों का है।" ईसाई दुनिया में यहूदियों के साथ "अछूतों" जैसे व्यवहार और नाजी जर्मनी द्वारा उनके नरसंहार के चलते गांधी की यहूदियों के प्रति गहरी सहानुभूति थी। हालांकि वे धर्म के नाम पर हथियारों की ताकत से फिलीस्तीनियों को देश-बदर करके यहूदियों का राज्य कायम करने की कार्रवाई के पूरी तरह खिलाफ थे। गांधी का मानना था कि यहूदी फिलीस्तीन में अरबों की सदिच्छा (गुड्विल) से रह सकते हैं। फिलीस्तीन-इजराइल के मामले में स्वतंत्र भारत की विदेश नीति पर गांधी के विचारों का प्रभाव लंबे समय तक बना रहा। भारत से यासिर अराफ़ात के बहुत अच्छे संबंध थे। इसके बावजूद यासिर अराफ़ात से लेकर महमूद अब्बास तक किसी नेता या संगठन ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह का साधन नहीं अपनाया। इजराइल की तरफ से मिलिटरी एक्शन और फिलीस्तीनियों की तरफ से टेरर एक्शन का सिलसिला समस्त समझौतों और शांति वार्ताओं के बावजूद इस क्षण तक जारी है।

1987 में हमास की स्थापना तक फिलीस्तीनी अपनी धार्मिक इस्लामी पहचान के नाम पर संघर्ष नहीं करते थे। इजराइल ने पीएलओ/फिलीस्तीनी राष्ट्रीय प्राधिकरण के मुकाबले हमास को आगे बढ़ाया, ताकि गाजा और वेस्ट बैंक समेत इजराइल के किसी भी कोने में फिलीस्तीनी राज्य बनने की संभावनाओं को हमेशा के लिए निरस्त किया जा सके। यह तभी संभव था जब फिलीस्तीनी संघर्ष धार्मिक जिहाद के रूप में आतंकी रास्ते पर चले। हमास ने लेबनन स्थित हिजबुल्लाह और कट्टरपंथी इस्लामी देशों/ताकतों के साथ मिल कर इजराइली मंशा को बखूबी पूरा करना शुरू कर दिया। जब ओस्लो समझौते के तहत पीएलओ ने इजराइल के अस्तित्व का समर्थन कर दिया तो हमास ने इजराइल के अस्तित्व के अधिकार को मानने से स्पष्ट इनकार कर दिया। हमास ने 2006 में फिलीस्तीनी विधान परिषद चुनाव में 44 प्रतिशत मत और कुल 132 में से 74 सीटें लेकर जीत हासिल की। सत्तारूढ़ फतह पार्टी को 41 प्रतिशत वोट और 45 सीटें मिलीं। इजराइल से सीधे भिड़ने के साथ 2007 में उसने फतह के साथ संघर्ष छेड़ दिया, और फिलीस्तीनी राष्ट्रीय प्राधिकरण को दो-फाड़ कर दिया। उसने न केवल फतह नेताओं को मिस्र और वेस्ट बैंक भागने को मजबूर कर दिया, कई की हत्या कर दी। उसने गाजा पर अपना एकक्षत्र कब्जा कर पिछले सभी समझौतों और शांति-प्रक्रियाओं के तहत हुए फैसलों को मानने से इनकार कर दिया। उसने 1994 से इजरालियों पर जो आतंकी हमले करना शुरू किए, उनकी सबसे ताज़ा कड़ी 7 अक्तूबर का

हमला है। फिलहाल यही लगता है कि हमास ने वेस्ट बैंक तक सीमित रह गए फिलीस्तीनी राष्ट्रपति महमूद अब्बास को अप्रासंगिक बना दिया है।

2

हमास अगर उसके ट्रैप में नहीं फंसता तो फिलीस्तीनियों के अपनी मातृ-भूमि के लिए किए जाने वाले संघर्ष को इस्लामिक जिहाद बनाने के लिए इजराइल-अमेरिका कुछ और उपाय करते। हमास 7 अक्तूबर का आतंकी हमला नहीं करता तो फिलीस्तीनियों की गाजा पट्टी अथवा वेस्ट बैंक की 'ओपन एयर जेल' से कोई और बड़ी वारदात होती। क्योंकि इजराइल की स्थापना के मूल में बैठी जिओनवादी मानसिकता फिलीस्तीनियों से सतत हिंसक संघर्ष और उस रास्ते पर उनके सफाए की हिमायती है। उसका समझौतों और शांति वार्ताओं में सच्चा विश्वास नहीं है। जब ओस्लो समझौते के तहत गाजा और वेस्ट बैंक का शासन फिलीस्तीनी राष्ट्रीय प्राधिकरण को दिया गया; और हमास ने आतंकी हमले करना शुरू किए तो एक रेडिकल यहूदी ने प्रधानमंत्री राबिन की हत्या कर दी थी। 2003 में जब प्रधानमंत्री शेरोन ने गाजा पट्टी से एकतरफा वापसी का निर्णय किया तो लिकुड पार्टी के अंदर और बाहर दक्षिणपंथी तत्वों ने उनका विरोध किया। इजराइल ने फिलीस्तीनी राष्ट्रीय प्राधिकरण के 2011 के फिलीस्तीनी राज्य, पूर्वी येरूशलम जिसकी राजधानी हो, के प्रस्ताव को एकतरफा कह कर खारिज कर दिया था। संयुक्त राष्ट्र में गैर-सदस्य राज्य के रूप में यूएन जनरल असेम्बली की मान्यता के बावजूद कोई फिलीस्तीनी राज्य अभी तक अस्तित्व में नहीं है। एक भू-भाग पर साथ-साथ दो राज्य बनाने की जितनी भी चर्चा होती हो, लगता नहीं कि ऐसा कभी होगा। कुछ समय के लिए ऐसा हुआ भी तो यह मानना कठिन है कि फिलीस्तीनी राज्य का अस्तित्व ज्यादा दिनों तक टिकेगा।

19वीं सदी में ही जिओनवादियों ने ऑटोमान साम्राज्य के अधीन फिलीस्तीन में होम लैंड कायम करने की घोषणा कर दी थी। 1917 में बाल्फोर घोषणा के तहत ब्रिटेन ने इस विचार को स्वीकृति दे दी थी। 1947 में यूएन ने फिलीस्तीन की धरती पर इजराइल की स्थापना का प्रस्ताव पारित कर दिया था। 1948 में यहूदियों को वहां भेजा गया, युद्ध हुआ, साढ़े सात लाख फिलीस्तीनियों को बाहर खदेड़ दिया गया। तब से लेकर आज तक कितने ही उतार-चढ़ावों के साथ दुनिया का यह अभी तक का सबसे लंबा संघर्ष चलता जा रहा है। अगर 1947-48 को संघर्ष का शुरुआत-बिंदु मानें तो जो स्थिति उस समय थी, लगभग वैसी स्थिति आज भी है। भिड़ंत इजराइली सत्ता-प्रतिष्ठान और हमास के बीच है। पीएलओ, फतह, फिलीस्तीनी राष्ट्रीय प्राधिकरण यानि शासन की प्रतिनिधि संस्थाएं और उनके प्रतिनिधि प्राय: अप्रासंगिक हो गए हैं। दोनों पक्षों में 50 से 60 प्रतिशत लोग फिलीस्तीन-इजराइल संघर्ष के समाधान के लिए हिंसा को एकमात्र उपाय मानते हैं।

जिसका अर्थ है दो नहीं, एक ही राष्ट्र का अस्तित्व रहेगा। हिंसक संघर्ष में जीत हमेशा इजराइल की ही होगी; और नरसंहार फिलीस्तीनियों का।

3

फिलीस्तीन-इजराइल संघर्ष के मूल में लड़ाई गहरी है। यहूदियों का धार्मिक मिथक है कि जहां यथार्थ में हजारों सालों से अरब फिलीस्तीनी रहते आ रहे थे, यानि जो फिलीस्तीनियों की मातृ-भूमि है, वह यहूदियों की धर्म-भूमि है। उनके धार्मिक आदि-पुरुषों को वहां से हटाया गया और सताया गया। करीब एक शताब्दी से जिऑनवादियों की तरफ से मिथक को यथार्थ और यथार्थ को मिथक बनाने की मुहिम चलाई जा रही है। कुछ शताब्दियों की कालावधी में हो सकता है यथार्थ मिथक और मिथक यथार्थ बन जाएगा। यानि एक देश के रूप में फिलीस्तीन मिथक बन जाएगा और इजराइल यथार्थ। बाकी दुनिया की बात छोड़िए, पश्चिम एशिया की युवा आबादी में ही फिलीस्तीन की तुलना में इजराइल का होना ज्यादा यथार्थ है।

फिलीस्तीन के यथार्थ को मिथक में और इजराइली मिथक को यथार्थ में बदलना है तो फिलीस्तीनियों को भू-भाग से खदेड़ना और अंतत: फिलीस्तीनी अस्मिता को विनष्ट कर देना होगा। इसमें चाहे कितना भी समय लगे। एक समय आएगा जब लोग भूल जाएंगे कि अरब क्षेत्र में फिलीस्तीन नाम की कोई जगह थी, जिस पर फिलीस्तीनी बसते थे। इजराइल की संतति अपने बच्चों को बताएंगी/पढ़ाएंगी कैसे "मानव-रूपी पशुओं" को उनके पुरखों ने अपनी सुंदर धरती से हमेशा के लिए मिटा दिया था। फिलीस्तीन-इजराइल संघर्ष से जुड़ी घटनाओं के घटाटोप का मिथकीकरण होता चला जाएगा। 7 अक्तूबर के हमास के आतंकी हमले और उसके प्रतिशोध में इजराइल द्वारा नरसंहार को लेकर मुख्यधारा और सोशल मीडिया में जो 'सही' और 'झूठी' खबरों का अंबार परोसा जा रहा है, वे मिथक-निर्माण में तरह-तरह की उपकथाओं का काम करेंगी। यह सिलसिला सैंकड़ों सालों तक चलता रहेगा। फिलीस्तीन-इजराइल संघर्ष के इतिहास को इस नजरिए से पढ़ा जा सकता है।

इज़राइल के पहले प्रधानमंत्री डेविड बेन-गुरियन ने 1948 में ही कहा था: "हम ट्रांसजॉर्डन को तोड़ देंगे, अम्मान पर बमबारी करेंगे और उसकी सेना को नष्ट कर देंगे; और फिर सीरिया का पतन होगा; और यदि मिस्र अभी भी लड़ना जारी रखेगा, तो हम पोर्ट सईद, अलेक्जेंड्रिया और काहिरा पर बमबारी करेंगे, ... यह उस चीज़ का प्रतिशोध होगा जो उन्होंने ... बाइबिल-काल (बिबलिकल टाइम) में हमारे पूर्वजों के साथ किया था।"

जहां पूरे अरब क्षेत्र के देशों की तबाही के मंसूबे बांधे गए हों, वहां फिलीस्तीनियों की क्या हस्ती है, जिनका अपना कोई देश ही नहीं है! धार्मिक उन्माद से भरे बेन-गुरियन अपने वक्तव्य में फिलीस्तीनियों के सफाए के प्रति पूरी तरह से आश्वस्त हैं। यही भाषा 75 साल बाद इजराइली नेता, सेना के अधिकारी और नागरिक बोल रहे हैं।

यह सही है कि फिलीस्तीनी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि भू-भागों के मूल निवासियों की तरह आधुनिक सभ्यता के चौखटे के बाहर नहीं हैं; और वे अकेले नहीं हैं। यह सभ्यताओं की टकराहट का दौर बताया गया है। हर दौर की सभ्यताओं की रचनात्मक कृतियों में 'नेकी' (गुड) और 'बदी' (ईविल) का द्वन्द्व बद्धमूल रहता है। क्लासिक्स में अक्सर बदी के ऊपर नेकी की जीत दिखाई जाती है। आधुनिक सभ्यता में नेकी के दावेदारों ने 7 अक्तूबर के हमलावरों की शिनाख्त "निरी बदी" (शियर ईविल) के रूप में की है। राज्य-प्रायोजित नरसंहार नेकी के खाते में डाला गया है। (देखें, हमास हमले पर अमेरिकी राष्ट्रपति की पहली प्रतिक्रिया) यहां इस जटिल विषय की गहराई में जाने का अवसर नहीं है। केवल यह देखा जा सकता है कि यहूदी जिऑनवाद और ईसाई सभ्यतावाद एक साथ मिल गए हैं। नेकी और बदी के सस्ते प्रमाणपत्र बांटने वाली इस दुष्ट मानसिकता की चिंता यहूदियों और ईसाइयों दोनों को होनी चाहिए।

क्या सचमुच पश्चिम एशिया समेत फिलीस्तीनियों के साथ कोई खड़ा है? मैं उन नेताओं/देशों की बात नहीं कर रहा हूं जो प्राथमिक तौर पर अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक, आर्थिक, सामरिक समीकरणों को ध्यान में रख कर कभी-कभी "फिलीस्तीनी कॉज़" की वकालत कर देते हैं। यूएन के पदाधिकारियों और संस्थाओं की तो बात ही क्या की जाए! महासचिव एंटोनीओ गुटेरस की दयनीय स्थिति किसी से छिपी नहीं है। मैं उनकी बात भी नहीं कर रहा हूं जो हमास की मार्फत मुसलमान के नाते फिलीस्तीनी मुसलमानों के लिए जोश दिखाते हैं। जो स्थिति है उसे देख कर यही लगता है कि सत्ता-प्रतिष्ठानों में फिलीस्तीनियों का कोई सच्चा साथी नहीं बचा है।

ऐसे में दुनिया का नागरिक समाज, जो काफी बड़ी संख्या में हो सकता है, अंतर्राष्ट्रीय नियम-कायदों और नैतिकता के आधार पर फिलीस्तीन-इजराइल संघर्ष के न्यायिक (जस्ट) समाधान में सहायक हो सकता है। यह एक सतत और लंबी प्रक्रिया होगी। हालांकि, यह तभी संभव है जब फिलीस्तीनी नेतृत्व और नागरिक समाज हिंसा की जगह अहिंसा और सत्याग्रह का आधार अपनाए। दुनिया के नागरिक समाज और फिलीस्तीनियों की तरफ से शुरुआत होगी तो इजराइली नेतृत्व और नागरिक समाज के रुख में भी परिवर्तन आने की संभावना बनेगी। हथियार और बाजार की शक्ति को ही एकमात्र शाक्ति मानने वाले देशों के नेतृत्व पर भी उसका असर पड़ेगा। इसके साथ पुराने और नए समझौतों और शांति वार्ताओं का सिलसिला तो चलते रहना ही चाहिए।

(समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च संस्थान, शिमला के पूर्व फ़ेलो हैं)